

ॐ

## आत्मसिद्धि (हिन्दी)

'आत्मा है', 'वह नित्य है', 'है कर्ता निजकर्म' ।  
'है भोक्ता', अरु 'मोक्ष है', 'मोक्ष उपाय सुधर्म' ॥४३॥  
षड्वानक संक्षेप में, षट्दर्शन भी यही ।  
समझाने परमार्थ को, ज्ञानी कहें सही ॥४४॥  
दृष्टि से दिखता नहीं, ज्ञात न होवे रूप ।  
अन्य भी अनुभव नहीं, अतः न जीव-स्वरूप ॥४५॥  
अथवा देह ही आत्मा, अथवा इन्द्रिय प्राण ।  
मिथ्या भिन्न है मानना, भिन्न नहीं पहचान ॥४६॥  
अरु होवे यदि आत्मा, काहे न प्रगट लखात ।  
लखाय जो होवे यथा, घट-पटादि विख्यात ॥४७॥  
अतः नहीं है आत्मा, मिथ्या मोक्ष-उपाय ।  
यह अन्तर शंका कही, समझावें सदुपाय ॥४८॥  
भासा देहाध्यास से, आत्मा देह-समान ।  
पर वे दोनों भिन्न हैं, लक्षण भिन्न प्रमाण ॥४९॥  
भासा देहाध्यास से, आत्मा देह-समान ।  
पर वे दोनों भिन्न हैं, जैसे असि अरु म्यान ॥५०॥  
जो दृष्ट है दृष्टि का, जो जानत है रूप ।  
अबाध्य अनुभव जो रहे, वह है जीव-स्वरूप ॥५१॥  
है इन्द्रिय प्रत्येक को, निज-निज विषय का ज्ञान ।  
पाँच इन्द्रिय विषय का, पर आत्मा को भान ॥५२॥  
देह न जानत विषय को, जानें न इन्द्रिय-प्राण ।  
पर आत्मा की सत्ता से, होत विषय पहिचान ॥५३॥

सर्व अवस्था में सदा, भिन्न रूप जनाय ।  
प्रगट रूप चैतन्यमय, लक्षण यही सदाय ॥५४॥  
जानत घट-पट आदि तू, तातें ताको मान ।  
ज्ञाता को मानत नहीं, यह कैसो तुझ ज्ञान ॥५५॥  
परम बुद्धि कृश देह में, स्थूल देह मति अल्प ।  
देह होय यदि आत्मा, घटित न हों ये विकल्प ॥५६॥  
जड-चेतन का भिन्न है, केवल प्रगट स्वभाव ।  
एकपना पावे नहीं, तीन काल द्वयभाव ॥५७॥  
आत्मा की शंका करे, आत्मा स्वयं ही आप ।  
शंका का कर्ता वही, अचरज यही अमाप ॥५८॥  
आत्मा के अस्तित्व के, आप जु कहे प्रकार ।  
सम्भव उसका होय है, अन्तर किया विचार ॥५९॥  
दूजी शंका हो यहाँ, आत्मा नहि अविनाश ।  
उपजे देह-संयोग से, देह-वियोग से नाश ॥६०॥  
अथवा वस्तु क्षणिक है, क्षण-क्षण में पलटाय ।  
इस अनुभव से भी नहीं, आत्मा नित्य जनाय ॥६१॥  
देह मात्र संयोग है, अरु जड रूपी दृश्य ।  
चेतन के उत्पाद-व्यय, किसके अनुभव वश्य ? ॥६२॥  
जिसके अनुभव वश में यह, उत्पाद-व्यय का ज्ञान ।  
होय नहीं यदि भिन्न वह, कैसे उसको भान ? ॥६३॥  
देहादिक संयोग सब, अनुभव से हों दृश्य ।  
उपजे नहि संयोग से, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष ॥६४॥  
जड से चेतन उपजता, चेतन से जड होय ।  
ऐसा अनुभव किसी को, नहीं कभी भी होय ॥६५॥  
कोई भी संयोग से, कभी नहीं उपजाय ।  
नाश न होता किसी में, इससे नित्य सदाय ॥६६॥

क्रोधादिक तरतम्यता, सर्पादिक में होय ।  
पूर्व-जन्म-संस्कार यह, जीव-नित्यता सोय ॥६७॥  
आत्मा द्रव्य से नित्य है, पर्याय से पलटाय ।  
बाल आदि वय तीन का, ज्ञान एक को होय ॥६८॥  
अथवा ज्ञान क्षणिक का, जो ज्ञाता कहनार ।  
कहने वाला क्षणिक नहीं, कर अनुभव निर्धार ॥६९॥  
कभी न कोई वस्तु का, केवल होय न नाश ।  
चेतन पावे नाश तो, किसमें मिले तलाश ॥७०॥  
कर्ता जीव न कर्म का, कर्म ही कर्ता कर्म ।  
अथवा सहज स्वभाव या, कर्म जीव का धर्म ॥७१॥  
आत्मा सदा असंग अरु, करे प्रकृति बन्ध ।  
अथवा ईश्वर प्रेरणा, जातैं जीव अबन्ध ॥७२॥  
तातैं मोक्ष उपाय का, कोई न हेतु लखात ।  
जीव कर्म-कर्तृत्व नहीं, हो यदि तो न नशात ॥७३॥  
होय न चेतन-प्रेरणा, कौन ग्रहे फिर कर्म ?  
जड-स्वभाव नहिं प्रेरणा, खोजो याको मर्म ॥७४॥  
यदि चेतन करता नहीं, तो नहिं होता कर्म ।  
तातैं सहज स्वभाव नहिं, नहीं जीव का धर्म ॥७५॥  
है असंग यदि सर्वथा, तुझे न भासे क्यों ?  
असंग है परमार्थ से, यदि निज अनुभव त्यों ॥७६॥  
कर्ता ईश्वर कोई नहिं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव ।  
अथवा प्रेरक मानें तो, ईश्वर दोष-प्रभाव ॥७७॥  
चेतन जो निज-भान में, कर्ता आप स्वभाव ।  
रहे नहिं निजभान में, कर्ता कर्म-प्रभाव ॥७८॥  
जीव कर्म-कर्ता कहो, पर भोक्ता नहिं सोय ।  
क्या समझे जडकर्म जो, फलदाता वह होय ? ॥७९॥

फलदाता ईश्वर गिनें, भोक्तापना सधाय ।  
ऐसा ईश्वर मानें तो, ईश्वरपना ही जाय ॥८०॥  
ईश्वर सिद्ध हुए बिना, जगत नियम नहीं होय ।  
अतः शुभाशुभ कर्म का, भोग्य स्थान नहीं कोय ॥८१॥  
भावकर्म निज-कल्पना, तातै चेतन-रूप ।  
जीव-वीर्य जब स्फुरित हो, ग्रहण करे जड-धूप ॥८२॥  
जहर-सुधा समझे नहीं, जीव खाय फल पाय ।  
योंहि शुभाशुभ कर्म का, भोक्तापना जनाय ॥८३॥  
एक रंक अरु एक नृप, इत्यादिक जो भेद ।  
कारण बिना न कार्य हो, यही शुभाशुभ वेद ॥८४॥  
फलदाता ईश्वर बने, इसमें नहीं जरूर ।  
कर्म स्वयं से परिणमे, होय भोग से दूर ॥८५॥  
उन-उन भोग्य विशेष के, स्थानक द्रव्य स्वभाव ।  
गहन बात है शिष्य यह, कही संक्षेप बताय ॥८६॥  
कर्ता-भोक्ता जीव हो, पर उसका नहीं मोक्ष ।  
बीता काल अनन्त पर, विद्यमान है दोष ॥८७॥  
शुभ करता फल भोगता, देवादि गति माहिं ।  
अशुभ करे नरकादि फल, कर्म रहित न होंहि ॥८८॥  
यथा शुभाशुभ कर्मपद, जाने सफल प्रमाण ।  
तथा निवृत्ति सफल है, तातै मोक्ष सुजान ॥८९॥  
बीता काल अनन्त वह, कर्म शुभाशुभ भाव ।  
इन्हीं शुभाशुभ नाश से, उपजे मोक्ष स्वभाव ॥९०॥  
देहादिक संयोग का, आत्यन्तिक वियोग ।  
सिद्ध मोक्ष शाश्वत पदस्थ, निज अनन्त सुख-भोग ॥९१॥  
होय कदाचित् मोक्ष पद, नहीं अविरोध उपाय ।  
कर्म काल अनन्त के, कैसे छेदें जाय ? ॥९२॥

अथवा मत दर्शन बहुत, कहेँ उपाय अनेक ।  
उनमें सच्चा कौन है ?, सूझत नहीं विवेक ॥९३॥  
किस जाति में मोक्ष है, कौन वेष में मोक्ष ? ।  
इसका निश्चय ना बने, बहुत भेद यह दोष ॥९४॥  
तातैं यह है भासता, मिले न मोक्ष उपाय ।  
जीवादि के ज्ञान से, क्या मदद हो जाय ? ॥९५॥  
पाँचों उत्तर से हुआ, समाधान सर्वांग ।  
समझूँ मोक्ष-उपाय तो, उदय-उदय सद्भाग्य ॥९६॥  
पाँचों उत्तर की हुई, आत्मा माहिँ प्रतीति ।  
होगी मोक्ष-उपाय की, सहज प्रतीति इस रीति ॥९७॥  
कर्मभाव अज्ञान है, मोक्षभाव निज-वास ।  
अन्धकार अज्ञान-सम, नाशे ज्ञान-प्रकाश ॥९८॥  
जो-जो कारण बन्ध के, वही बन्ध के पन्थ ।  
उन कारण-छेदक दशा, मोक्ष-पन्थ भव-अन्त ॥९९॥  
राग-द्वेष-अज्ञान ये, मुख्य कर्म के ग्रन्थ ।  
जिससे इनकी निवृत्ति हो, वही मोक्ष का पन्थ ॥१००॥  
आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभास रहित ।  
जिससे केवल प्राप्त हो, मोक्ष-पन्थ यह रीत ॥१०१॥  
कर्म अनन्त प्रकार के, तामें मुख्य जु आठ ।  
मोहनीय उनमें प्रमुख, तन्नाशक कहूँ पाठ ॥१०२॥  
मोहनीय के भेद दो, दर्शन-चारित्र नाम ।  
घातें बोध-वीतरागता, अचूक उपाय जु आम ॥१०३॥  
कर्म-बन्ध क्रोधादि से, क्षमाभाव से नाश ।  
प्रत्यक्ष अनुभव सर्व को, नहीं संशय अवकाश ॥१०४॥  
मत-दर्शन का छोड़कर, आग्रह और विकल्प ।  
कथित मार्ग साधन करे, जन्म उसी के अल्प ॥१०५॥

षट्-पद के षट्-प्रश्न ये, जो पूछे हितकार ।  
उन पद की सर्वांगता, मोक्षमार्ग निर्धार ॥१०६॥  
जाति-वेष का भेद नहीं, कहा मार्ग यदि होय ।  
साधे वह मुक्ति लहे, इसमें भेद न कोय ॥१०७॥  
कषाय की उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष ।  
भव से खेद, अन्तर-दया, उसे कहें जिज्ञास ॥१०८॥  
उस जिज्ञासु जीव को, यदि हो सदगुरु-बोध ।  
तो पावे सम्यत्त्व को, वर्ते अन्तर-शोध ॥१०९॥  
मत-दर्शन-आग्रह तजे, वर्ते सदगुरु-लक्ष ।  
लहे शुद्ध सम्यत्त्व वह, जिसमें भेद न पक्ष ॥११०॥  
वर्ते निज-स्वभाव का, अनुभव लक्ष प्रतीत ।  
वृत्ति बहे निज-भाव में, वह निश्चय समकित ॥१११॥  
वर्धमान सम्यत्त्व हो, टाले मिथ्याभास ।  
उदय होय चारित्र का, वीतराग-पद वास ॥११२॥  
केवल निज-स्वभाव का, अखण्ड वर्ते ज्ञान ।  
कहते केवलज्ञान वह, देह सहित परमात्म ॥११३॥  
कोटि वर्ष का स्वप्न भी, जाग्रत हो शम जाय ।  
त्यों विभाव अनादि का, ज्ञान होय क्षय पाय ॥११४॥  
छूटे देहाध्यास तो, नहीं कर्ता तू कर्म ।  
कर्म-फल-भोक्ता न तू, यही धर्म का मर्म ॥११५॥  
यही धर्म है मोक्षप्रद, तू है मोक्ष स्वरूप ।  
अनन्त दर्शन-ज्ञान तू, अव्याबाध स्वरूप ॥११६॥  
शुद्ध बुद्ध चैतन्य-घन, स्वयं-ज्योति सुख-धाम ।  
और अधिक कितना कहें, कर विचार तो पाम ॥११७॥  
निश्चय सब ही ज्ञानी का, आकर यहाँ समाय ।  
यों कहकर धरि मौनता, सहज समाधि थाय ॥११८॥